परम योगीराज आनन्दधनजी महाराज अष्टसहस्त्री पढ़ाते थे ।

म० विनयसागर

पूज्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी म. ने 'आनन्दघन पदसंग्रह भावार्थ' और मोतीचन्द गिरधरलाल कापड़िया ने 'आनन्दघनजी ना पदो भाग १-२' में श्री आनन्दघनजी महाराज के जीवन चरित्र के सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन किया है । अतः उस सम्बन्ध में कुछ भी लिखना चर्वितचर्वण या पिष्टपेषण मात्र होगा । दोनों प्रसिद्ध लेखकों ने यह तो स्वीकार किया ही है कि पूज्य आनन्दघनजी महाराज का दीक्षा नाम लाभानन्द, लाभानन्दी या लाभविजय था और मेड़ता में निवास करते थे । पिछली अवस्था का उनका नाम आनन्दघन था, किन्तु इन लेखकों ने आनन्दघनजी को वे तपागच्छ के थे इस प्रकार का प्रतिपादन किया है ।

इनके मन्तव्यों का समाधान करते हुए स्वर्गीय श्री भँवरलालजी नाहटा ने आनन्दघन चौवीसी, (विवेचनकार-मुनि सहजानन्दघन, प्रकाशक- प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर और श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी सन् १९८९) की प्रस्तावना (अवधूत योगीन्द्र श्री आनन्दघन) में गहनता से विचार किया है । और प्रमाणपुरस्सर यह प्रतिपादित किया है कि श्री आनन्दघनजी महाराज खरतरगच्छ के थे ।

इसी प्रस्तावना के पृष्ठ ३४ में उन्होंने मेरे नामोल्लेख के साथ लिखा है :-

"श्री पुण्यविजयजी महाराज वहाँ से बीकानेर पधारे थे और उपाध्याय विनयसागरजी को उनके साथ अभ्यास हेतु भेजा गया था, वे उनके साथ काफी रहे थे । मुनिश्री ने वह पत्र विनयसागरजी को दे दिया था जो उन्होंने अपने संग्रह-कोटा में रखा था । अभी उनके पर्युषण पर पधारने पर वह पत्र उनके संग्रह में ज्ञात हुआ, पर अभी खोजने पर नहीं मिला तो भविष्य में खोज कर मिलने पर प्रकाश डाला जा सकेगा । पर यहाँ पर इस अवतरण पर विस्तृत प्रकाश डालने का प्रयत्न करता हूँ ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री नाहटाजी का यह लिखना पूर्ण सत्य है कि दो वर्ष तक मैं उनके सामीप्य में रहा, चातुर्मास भी किए । सन् १९५२ में अहमदाबाद में आगम प्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजयजी से उक्त पत्र मैंने प्राप्त किया जो कि मेरे संग्रह में सुरक्षित है । श्री नाहटाजी के लिखने पर मैंने इस पत्र को बहुत ढूंढा । अनेक बार सूचियों का अवलोकन किया किन्तु वह पत्र मेरी दृष्टि से ओझल ही रहा । किसी प्रति के साथ संलग्न हो गया था । संयोग से कुछ दिन पूर्व ही यह महत्त्वपूर्ण पत्र मुझे प्राप्त हो गया । उसकी अविकल प्रतिलिपि संलग्न है :-

स्वस्ति श्रीभरवृद्धिसिद्धिविधये नत्वा सतत्त्वावलिं,
श्रीपार्श्वं प्रणतामरेन्द्रनिचयं मात्रा सनाथं मुदा ।
दुष्टेच्छिष्टकुच्चिष्टकामठहठभ्रंसप्रबद्धादरं,
हस्त्यारूढमनल्पलोकनिवहैरालोकितं सादरम् ॥१॥

कामः कामितपौरलक्ष्यनयना या निर्ममे स्वाङ्गनाः,
स्वस्यामोघसुशस्त्रगेहमबला यस्यां वराङ्गप्रभाः ।
कर्णे चोच्छलदशुंमालकनकप्राजिष्णुसत्कुण्डल-
चक्रैश्चञ्चलनेत्रसाङ्गनिवहैर्हारैश्च पाशप्रभैः ॥२॥

लक्ष्मीवासितया जितासुरपुरी लङ्का च वैषम्यतो,
यत्र श्राद्धजनो विशेषनिपुणो दानप्रबद्धादरः ।
भक्तस्तीर्थपतौ रतौ जिनमते नित्यं सुशीलाशयः,
सिद्धान्ते धृतधीरलं विरमितः श्रीसदुरौ भक्तिमान् ॥३॥

तस्यां सूर्यपुरी पुरिप्रतिनिधौ श्रीस्वर्गपुर्या रया-
च्छ्रीपूज्यप्रवरांह्रिपद्मयमलैः पूताध्वकायामलम् ।
गङ्गानीरसुचन्द्रचन्द्रसुदधिस्तम्बेरमाधीश्वरा-
तिश्वेतामलकीर्त्तिकीर्तनबलात्श्वेतीकृतायां जनैः ॥४॥

यद्वक्त्रप्रवरप्रभाभिरभितः सन्तर्जितश्चन्द्रमा-
नष्ट्वा संविदधे नभस्यतितरामभ्रभ्रमद्भूरे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूरिश्लक्ष्णजटावलौ निवसनं गौरीशितुर्मूर्द्धनि,
सूर्ये सौर्यनिरस्तसर्वखचराद्दीप्रप्रदीप्त्यावलौ ॥५॥

सत्काव्यामृतकारिताभिरभितः काव्यो जितः स्वर्गतो-
ऽनेकानेकविवेकशास्त्रनिकराभ्यासात् पुनः स्वर्गुरुः ।
व्याकर्णार्णवतर्कतर्कनिपुणाच्छन्दःपवित्राननान्,
सत्काव्यामृतपानपीनहृदयान् सुद्धार्थविज्ञान्मुदा ॥६॥

व्यक्तालङ्कृतिशास्त्रसाधनमतीन् साधुक्रियासाधकान्,
कुर्वाणान् वरधर्ममार्गसुविधौ बद्धादरान् श्रावकान् ।
तान् श्रीश्रीजिनचन्द्रसूरिसुगुरून् सत्साधुसंसेवितान्,
नत्वा विज्ञपयत्पदः सुवचनं **श्रीमेड़तातः** पुरात् ॥७॥

शिष्याः पाठकवर्य**पुण्यकलसाः** भक्त्या प्रणम्यात्मनः,
सद्विद्वज्ज**यरंग**नाममुनिभि**स्त्रैलोक्यचन्द्रेण** च ।
युक्ता हर्षवशात् कृताञ्जलिपुटाश्चारित्रचन्द्रादिभिः,
सानन्दं सह तोषपोषविधिभिः सस्नेहमानन्दतः ॥८॥

सौख्यं भूरितरं यशो गुरुतरं पूजाप्रसादादिह,
भावत्कं सततं मनस्यतितरामीहामहे भूरिशः ।
सोत्कर्षं सह जैनधर्मगुरुता सत्पारणाभिस्तपः-
पूरैर्द्वादशकप्रभावनिकया चाराधितः पर्वराट् ॥९॥

चिन्तास्मद् हृदि तावदुत्कटतरा प्रादुर्बभूवेदृशी,
सर्वस्मिन्नपि देश आगतमहो पत्रं हि नो नान्तके ।
किं वा कारणमत्र चित्रकलितं नो कोपि कोपः पुनः,
श्रीपूज्या गुरवः प्रभावगुरवः शिष्या वो वा वयम्(?) ॥१०॥

अस्माकं ह्युपरिकृपागुरुतरां पूर्वं ह्यभून्नाधुना,
युष्मद् भूरिवयो गदारुसुकरः पत्रात्पवित्रात्क्षिणात् ।
चारुश्रावणमास आसु लिखितात्राकादिने सुन्दरे,
नात्रोभूत्करपत्रतः शुभवतां प्राप्ताच्च तस्यायतः ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आविर्भूत इवार्कमण्डलकरे स्थातुं कुतोलं तमः,
गर्जत्तोयदशामलाभ्रपटलान्ते दीप्रदाघावलिः ।
जिह्वायुग्मवरस्युरत्फणगणव्यालास्यवाकृष्णवेः,
शुद्धं श्रीगुरुभिर्मुदा कृतकृपैर्देयं पवित्रं दलम् ॥१२॥

मासे चास्वनि नाम्नि चोज्वलतरे पक्षे वरे वासरे,
द्वादश्यां प्रवरे च सुन्दरतरे वारे द्विजाधीशकम् ।
अत्रत्यः सकलोपि श्राद्धनिचयः सद्भावभिन्नाशयः,
वन्दत्यन्वहमाशु तत्र भवतां शिष्याश्च वन्द्या मुहुः ॥१३॥

धीमान् धीधरवान् धराधिधरवान् धीरत्ववान् ध्यानवान्,
ज्योतिर्वान् यतिवान् यतित्वगुणवान् जेतृत्ववान् निस्तनोः ।
नन्द्याच्चन्द्रगणाधिपश्चिरमसौ **श्रीजैनचन्द्राभिधः**,
आशीर्नित्यमलं ददाति प्रमुदश्चारित्रचन्द्राभिधः ॥१४॥

॥ तथा श्रीजीनइ पत्र ३ आगइ मुंक्या छइ तीणथी सर्वसमाचार अवधारेज्यो । अपरं शिष्य दो कुटेवा पड्या छइ, अतः परं श्रीजीनी कृपाथी सुनजरथी स्वामी धर्म गुण थी समाधि थई । श्रीसंघइ घणी परिचर्या कीधी धन्य श्रावक श्राविका छइ ।

अपरं अत्र नइ संघइ श्री पूज्यजीनइ वीनती लिखीछइ ते जउ श्रीपूज्यजी नइ दाई आवइ । अत्र नउ आदेश द्यउ, तउ बि क्षेत्र देज्यो मेडता नागौर ना । पणि कहवा पड्या क्षेत्र स्वरूप पूजजी मालूम छइ । पूज्यजीरइ प्रसादै पारावणउ घणउ ही आवइ छइ । परं हवि ष चीतरउ ग्रन्थि सत्क । ईए वास्तइ श्रीजीनइ वीनती लिखीछइ, अत्रनउ ऽऽदेश द्यउ, तउ श्रीनागोर नउ पिणि कृपा करेज्यो, ए अरज छइ । पछइ जिम प्रभुजीनइ विचार आवइ ते प्रमाणा । अपरं समाचार एक अवधारिज्यो । रजत ४ चो. खेतानइ दिया हुता ते ऽजी पिण ते चढ़ाव्या नथी । थे जाणउ छउ । जिस्यउऽऽहार वमवउ दोहिलउ अजोग्य दल वाडउ बोलिवा जोग्य नहीं । अपरं वली कहइ छइ खेतउ श्री पूज्यजीनइ लिखउ रजत ४ मुंकिद्यई तीनिरइ वास्तइ श्रीजीनइ म्हे कह्या छइ । तीए वास्तइ कदाचि श्रीजी मुंकउं तउ श्रीसंघनई मुंकेज्यो । अपरं वा श्रीपूजजी उरइ तीण नइ भलाव्या तउ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूझता ऽऽचमन करिस्यइ, पूज्यजी मालूमछइ, हुं सुं लिखूं थोड़इ लिख्यइ घणउ अवधारेज्यो । वलतां समाचार तुरन्त प्रसाद करावेज्यो ।

पं. जयरंग, पं. तिलकचन्द्र, पं. चारित्रचन्द, पं. सुगुणचन्द, चि. मानसिंह, चि. बालचन्द .... वन्दना अवधारेज्यो ।

॥ पं. सुगुणचन्द अष्टसहस्री **लाभाणन्द** आगइ भणइ छइ ऽद्धरइ टाणइ भणी । घणउ खुसी हुई भणावइ छइ ।

अत्रना श्रीसंघरी वंदणा । श्रा. सुजाणदे श्रा. नाह ... श्रा अहंकारदे, संसारदे, केसरदे, प्रमुखरी वन्दना ऽवधारेज्यो ॥ आसु सूदि १२

वा. हीररत्नजी नइ वन्दना वांचेज्यो ।

x x x

चौड़ाई ११ और लम्बाई २०.५ से.मी. है ।

यह पत्र सूरत में विराजमान श्रीजिनरत्नसूरिजी के पट्टधर श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को लिखा गया है । मेड़ता से उपाध्याय पुण्यकलशजी, श्री जयरंग, श्रीतिलोकचन्द्र, श्री चारित्रचन्द्र आदि शिष्य समुदाय के साथ लिखकर भेजा है । मिति आसोज सुदि १२ दी है किन्तु संवत् नहीं दिया है । श्रीजिनचन्द्रसूरि का आचार्यकाल विक्रम संवत् १७०० से १७११ है । अतः यह पत्र इसी मध्य में लिखा गया है । पत्र का प्रारम्भ संस्कृत के शार्दूलविक्रीडित छन्द में १४ श्लोकों में किया गया है जो आचार्य के विशेषणों से परिपूर्ण है ।

इसके पश्चात् सारा का सारा पत्र राजस्थानी भाषा में लिखा गया है जिसमें यह दर्शाया गया है कि उपाध्याय पुण्यकलशजी का अपने शिष्य वृन्द के साथ चातुर्मास मेड़ता में है । पर्युषण पर्व पर धर्माराधन इत्यादि का उल्लेख किया गया है । और चाहते हैं कि आचार्यश्री आदेश दें तो नागोर की तरफ विहार करें ।

इस पत्र की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना का जो उल्लेख किया गया है वह है :-

॥ पं. सुगुणचन्द अष्टसहस्त्री लाभाणन्द आगइ भणइ छइ ऽद्धरइ टाणइ भणी । घणउ खुसी हुई भणावइ छइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाभानन्दजी सुगुणचन्द्र को अष्टसहस्री प्रसन्नतापूर्वक पढ़ा रहे हैं । अष्टसहस्री आकर और उच्चतम दार्शनिक ग्रन्थ है । जिस पर न्यायाचार्य श्री यशोविजयोपाध्यायजी ने टीका लिखी है । इस ग्रन्थ का सामान्य विद्वान् अध्ययन नहीं कर सकता । उस पर भी उस ग्रन्थ को पढ़ाने का दायित्व लाभानन्दजी संभाल रहे हैं । स्पष्ट है कि लाभानन्दजी सामान्य विद्वान् नहीं थे, उच्चकोटि के विद्वान् थे, पारङ्गत मनीषी थे । क्योंकि चिन्तन के बिना इस ग्रन्थ को पढ़ाना सम्भव नहीं था । पढ़ने वाले सुगुणचन्द्र भी समर्थ विद्वान् थे । इसी कारण लाभानन्दजी के पास प्रसन्नतापूर्वक पढ़ रहे थे ।

आनन्द 'नन्दी' देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक वे लाभानन्दजी रहे तब तक वे खरतरगच्छ के ही थे । ज्यों ही सब कुछ उपाश्रय, परिग्रह, नाम इत्यादि का त्याग कर अवधूत आनन्दघन बने तो वे सब गच्छादि से मुक्त हो गए और सर्वमान्य हो गए । वे परम आगमिक, दार्शनिक, आत्मानन्दी और रहस्यवादी विद्वान् थे । यही कारण है कि उनकी चौवीसी और पद दर्शनशास्त्र के गूढ रहस्यों से परिपूर्ण होने के कारण वे सार्वजनीन हो गए । किसी गच्छ के न रहे, किसी परम्परा के न रहे । आज श्वेताम्बर समाज आनन्दघनजी को योगीराज ही मानता आया है और उनकी कृतियों को सर्वदा सिर चढ़ाता आया है । ऐसे योगीराज को मेरा कोटिशः नमन ।[१]

---

१. [सम्पादकनी नोंध : आनन्दघनजीने तपागच्छवाळा तपागच्छीय तरीके स्वीकारे छे, अने खरतरगच्छवाळा खरतरगच्छना माने छे. डॉ. कुमारपाल देसाईए पोताना आनन्दघनविषयक शोधप्रबन्धमां आ विशे विशद चर्चा करीने तारणो आप्यां छे. वास्तवमां आ मुद्दो आनन्दघनजीनी सर्वमान्यता नो ज संकेत आपे छे. अन्य गच्छना मुनि अन्यगच्छीय पासे पण भणता ज हता अने होय छे, ते मुद्दो पण वीसरवो न जोईए.

एक बीजी विशिष्ट वात ए नोंधवी छे के अमारा परमगुरु शासनसम्राट विजयनेमिसूरि महाराजनुं चरित्रलेखन करवानो प्रसंग आव्यो, त्यारे तेमना जीवननी दस्तावेजी नोंधनां पृष्ठो फेरवतां एक विलक्षण वात नोंधायेली मळी आवी. ते वात आवी छे : "तपगच्छना धुरन्धर अने उद्भट विद्वान् उपाध्यायश्री धर्मसागरजी महाराज, आनन्दघनजी पासे भगवतीसूत्रनी वाचना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य प्रवर स्वर्गीय श्री विजयकलापूर्णसूरिजी महाराज ने आनन्दघनजी के मेड़ता स्थित उपाश्रय का जीर्णोद्धार करवाकर दर्शनीय गुरु मन्दिर बनवा कर भक्तों के लिए अनुपम कार्य किया है ।

C/o. प्राकृत भारती
१३-A. मेन गुरुनानकपथ
मालवीय नगर
जयपुर-३०२०१७

*

लेता हता. पोते दीक्षा तथा वयमां वडील अने आनन्दघन घणा नाना, छतां तेमने पाटला पर बेसाडी पोते विनयपूर्वक सामे बेसीने वाचना लेता हता."

अलबत्त, आ वात दन्तकथा छे के हकीकत, तेनो निर्णय करवानुं कोई साधन नथी ज. परन्तु नेमिसूरिमहाराज पासे परम्परागत आ वात आवी होई ते साव निराधार होय तेम पण मानवुं ठीक नथी.

धर्मसागरजीने भगवतीसूत्र न आवडतुं होय ते तो शक्य ज नथी; पण आनन्दघनजी पासे कोई विलक्षण रहस्यबोध हशे, अने ते कारणे ज आवा वृद्ध पुरुष पण तेमनो लाभ लेवा प्रेराया हशे एम बनवाजोग छे. अस्तु. **–शी.**|

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org